AD EDUXIAN JOURNAL
A Quarterly Multidisciplinary Blind Peer Reviewed & Refereed, Open Acces & Google Scholar Indexed International E- Journal
Vol (1&2), Issue (3), Nov -Jan 2024-25 ISSN: 3048-7951

ब्रिटिश भारत में प्राच्य एवं पाश्चात्य शिक्षा विवाद का विश्लेषणात्मक अध्ययन

मुन्ना गुप्ता[1] और प्रो. (डॉ.) सविता सिन्हा[2]

सारांश: भारतीय इतिहास में आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक वैयक्तिक, शैक्षिक, सामाजिक क्षेत्रों में बदलाव होता रहा है। मानव सभ्यता के उद्भव एवं विकास से लेकर वर्तमान समय तक शिक्षा अनवरत चलने वाली प्रक्रिया है। मानव जीवन-शैली के विकास के साथ साथ शिक्षा, संस्कार, आचरण-व्यवहार, क्रियाकलापों का विकास एवं पीढ़ी दर पीढ़ी स्थानान्तरण शिक्षा के माध्यम से हुआ है। मानवीय जीवन की समस्याएं वास्तव में शिक्षा की समस्याएं है। प्राचीन कालीन भारत में शिक्षा का स्वरूप अनौपचारिक अधिक तथा औपचारिक कम था। बौद्ध काल में शिक्षा व्यवस्था को लोकतांत्रिक बनाने का कार्य प्रारम्भ किया गया। किंतु मध्यकालीन भारत में शिक्षा सुखपूर्वक जीवन-यापन का आधार मात्र बनकर रह गयी थी। भारत में अंग्रेजो का आगमन व्यापार करने के उद्देश्य से हुआ किंतु धीरे धीरे उन्होंने साम्राज्य की स्थापना कर भारत अधिकांश क्षेत्रों आधिपत्य कर लिया। भारतीय सामाजिक, राजनीति, सांस्कृतिक, धार्मिक आदि प्रत्येक क्षेत्र को अंग्रेजी शासन व्यवस्था ने प्रभावित किया। सर्वप्रथम 1773 ई. में रेगुलेटिंग एक्ट का निर्माण किया जिसमें उनके भारतीय शासन को वैधानिक स्वरूप प्रदान किया। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, व्यावसायिक, सांस्कृतिक क्षेत्रो के साथ-साथ समयोपरान्त शिक्षा के क्षेत्र में भी अंग्रेजो का अधिपत्य बढ़ता चला गया। ऐसा होने के कारण भारत के परम्परागत ज्ञान, साहित्य, विद्या, विचार आदि पर दुष्प्रभाव पड़ने लगा जिस कारण भारतीय विद्वजन एवं राजनीतिज्ञ द्वारा शिक्षा के पश्चात्य स्वरुप पर विरोध का स्वर उठने लगा। इस प्रकार दो विचारधाराओं प्राच्य शिक्षा एवं पाश्चात्य शिक्षा समर्थको का जन्म हुआ। भारतीय शिक्षा के इतिहास में ब्रिटिश शासन के दौरान प्राच्य-पाश्चात्य शिक्षा विवाद ने शिक्षा व्यवस्था को नवीन रूप-रंग और दिशा प्रदान किया था। जिसका प्रभाव वर्तमान समय में इक्कीसवीं सदी की शिक्षा व्यवस्था पर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। शिक्षा के निजीकरण, वैश्वीकरण, पश्चिमीकरण और

[1] **शोधार्थी, शिक्षा संकाय, कैपिटल यूनिवर्सिटी, कोडरमा (झारखंड) भारत**

[2] **शोध पर्यवेक्षिका, शिक्षा संकाय, कैपिटल यूनिवर्सिटी, कोडरमा (झारखंड), भारत|**

तकनीकीकरण में ब्रिटिश शासन व्यवस्था एवं उनकी भारतीय परिप्रेक्ष्य में शैक्षिक रणनीति आजादी के आठ दशक बाद भी दिखाई देती है। प्रस्तुत विषयवस्तु में प्राच्यवादी विचारधारा एवं पाश्चात्यवादी विचारधारा के मूलभूत पहलूओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है।

प्रमुख शब्दावली: प्राच्यवादी, पाश्चात्यवादी, ब्रिटिश काल, परंपरागत, ज्ञान, विचारधाराएं, साम्राज्य, उपनिवेशवाद इत्यादि

भूमिका: भारतीय ज्ञान परंपरा एवं उसके साहित्य का इतिहास वैदिक काल से प्रारंभ होकर वर्तमान समय तक अपनी अमिट छाप छोड़ता है। मध्यकालीन भारत में शिक्षा का अंतिम लक्ष्य सुखपूर्वक जीवनयापन बताया गया किंतु आधुनिक काल में शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य बालक का सर्वांगीण विकास करना निर्धारित किया गया है। भारत की स्वतंत्रता के पूर्व लगभग 200 वर्षों तक ब्रिटिश साम्राज्य का आधिपत्य रहा था। इन दिनों शिक्षा के क्षेत्र में अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा एवं पाश्चात्य साहित्य, संस्कृति को बढ़ावा दिया गया था। ब्रिटिश शासन के दौरान शिक्षा का उद्देश्य साम्राज्य विस्तार एवं शासन व्यवस्था पर अधिकार स्थापित करना था। भारत के परंपरागत ज्ञान, विचारधाराएं, साहित्य और संस्कृति को क्षीण करने की कोशिश किया गया। इसी समय में शिक्षा को लेकर विद्वानों का दो वर्ग बन गया जिसमें एक प्राचीन साहित्य एवं संस्कृति को महत्व दिया तो दूसरे ने पाश्चात्य साहित्य एवं संस्कृति को अच्छा एवं निवर्तमान भारतीय परिवेश के लिए ठीक बताया। स्वाभाविक है कि दो परस्पर विरोधी विचारधारा होने के नाते शिक्षा एवं उससे जुड़े विभिन्न पहलुओं पर प्रभाव पड़ा। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भारतीय ज्ञान परंपरा, साहित्य एवं सांस्कृतिक धरोहर को पुनः स्थापित करने पर बल दिया गया है। यह आशा और विश्वास है कि आने वाले दो-चार दशकों में शिक्षा, शिक्षण, प्रशिक्षण और उससे संबंधित अन्य पहलुओं का व्यापक विस्तार होगा और आने वाली पीढ़ी को नई दिशा मिलेगी।

प्राच्य शिक्षा एवं उसके साहित्य; भारतीय संदर्भ में ज्ञान का आदि स्त्रोत वेद, पुराण, उपनिषद, षडदर्शन आदि को माना गया है। प्राच्य साहित्य का संबंध वर्तमान शिक्षा से प्रत्यक्ष रूप से संबंधित है। प्राच्य शिक्षा का अभिप्राय प्राचीन काल से भारत में दी जा रही शिक्षा से है। प्राचीनकाल में शिक्षा का स्वरूप व्यक्तिगत होता था शिष्य गुरु के आश्रम पर या गुरु के घर पर रहकर शिक्षा प्राप्त करता था। गुरु का उपदेश शिष्य के लिए सर्वोपरि

होता था। गुरु और शिष्य में सम्बंध पिता-पुत्र की भांति होता था। गुरु के उपदेश की अवहेलना ईश्वर के उपदेश की अवहेलना माना जाता था। प्राच्य शिक्षा में वैदिक साहित्य की शिक्षा के लिए परिषद, टोल, गुरुकूल, विद्यापीठ, मंदिर महाविद्यालय आदि हुआ करते थे। जहां संस्कृत भाषा मे वेद, पुराण उपनिषद, षडवेदांग, व्यवहारिक जीवन की शिक्षा प्रदान की जाती थी। शिष्य को **ब्रह्मचर्य** जीवन का पालन करना होता था जीवन के प्रारम्भिक पच्चीस वर्ष का समय शिक्षा **संस्कार** एवं कौशल विकास के लिए निश्चित किया गया था। प्राच्य शिक्षा व्यवस्था में ब्राह्मण, एवं, वैश्य को शिक्षा प्रदान करने के लिए उपनयन संस्कार कराया जाता था। चतुर्थ वर्ण शूद्र को शिक्षा का अधिकार नहीं मिलता था। इस प्रकार प्राच्य शिक्षा में भेदभाव का समावेश था तथा अन्य तीन वर्णों मे भी प्रवेश का समय, वस्त्रधारण, खान-पान, रहन-सहन, वेशभूषा, कार्य व्यवहार तथा जीवनशैली में विविधता का उल्लेख मिलता है। प्राच्य शिक्षा का सम्बंध भारत की प्राचीन सभ्यता, संस्कृति, परिस्थिति, संस्कार आदि से रहा है। प्राच्य शिक्षा की सबसे प्रमुख विशेषता - नैतिक जीवन यापन तथा आध्यात्मिक गुणों का **विकास** कर मोक्ष की प्राप्ति की ओर अग्रसर करना था। मानव जीवन साधारण, सरल, व्यावहारिक उदार परस्पर स्नेहपूर्ण, मेलमिलाप, **सहानुभूति** पूर्ण हुआ करता था। शिक्षा की समयावधि का निर्धारण कर दिया गया था। चारो वेदों के अध्ययन करने में अड़तालीस वर्ष का समय लगता था। चारो वेदों के ज्ञाता को चतुर्वेदी कहा जाता था वहीं एक वेद के अध्ययन में बारह वर्ष का समय लगता था जिसे पूरे करने वाले को स्नातक कहा जाता था। दो वेदों का **अध्ययन** समय चौबीस वर्ष तथा इसे पूरा करने वाले शिष्य को वसु तथा तीन वेदों का अध्ययन समय छत्तीस वर्ष व इसे पूरा करने वाले शिष्य को रुद्र की उपाधि से विभूषित किया जाता था। जिस प्रकार शिक्षा प्रारंभ करने के लिए उपनयन संस्कार होते थे ठीक उसी प्रकार शिक्षा समापन के लिए समापवर्तन संस्कार का आयोजन किया जाता था। जिसे आधुनिक काल में दीक्षांत समारोह के नाम से जाना जाता है। इस प्रकार प्राच्य शिक्षा भारत की **सभ्यता** और संस्कृति में समाहित है। जो वर्षो बाद इक्कीसवीं में आज भी अपनी उपदेयता बनाए हुए है।

पाश्चात्य शिक्षा व्यवस्था: पाश्चात्य दर्शन एवं साहित्य का संबंध **ग्रीक** भाषा एवं उसके साहित्य से जोड़ा जाता है। प्रारंभ में सुकरात, प्लेटो एवं अरस्तु का नाम प्रमुखता से लिया जाता है आधुनिक युग में इसके परिवर्तित स्वरूप अंग्रेजी साहित्य एवं उसकी शिक्षा को कहा

गया है। पाश्चात्य शिक्षा को अंग्रेजो की शिक्षा व्यवस्था कह सकते है। ब्रिटिश शासन के दौरान पश्चिमी देशों में प्रचलित शिक्षा का भारत में प्रचार प्रसार करके उसे प्राच्य शिक्षा से अधिक अच्छी, गुणवत्तायुक्त, उपयोगी बताकर थोपा गया। सोलहवीं सदी के अन्तिम दशको में पूर्तगाली, फ्रांसीसी, डच, अंग्रेज आदि भारत आए लेकिन अंग्रेजो ने भारतीयों पर सत्ता स्थापित कर ली। सामाजिक, आर्थिक, प्रशासनिक व राजनीतिक क्षेत्रों के साथ-साथ शिक्षा के क्षेत्र में भी अपना प्रभुत्व स्थापित करना प्रारंभ कर दिया। पाश्चात्य शिक्षा का प्रचार-प्रसार करने के लिए अंग्रेजो ने सर्वप्रथम पढ़े लिखे बुद्धिजीवी वर्ग के भारतीयों को विभिन्न प्रकार के लालच के जाल मे फंसा कर अपनी ओर मिला लिया। पाश्चात्य शिक्षा के प्रचार-प्रसार का प्रमुख उद्देश्य भारतीयों के लिए अपने अनुकूल अधिकारी, कर्मचारी, नौकरशाह तैयार करना रहा। पाश्चात्य शिक्षा की भाषा अंग्रेजी रही है जो कि भारतीयों से बहुत दूर तथा समझ से परे रही है। आज भी एक बहुत बड़ा तबका इससे प्रभावित है। पाश्चात्य शिक्षा को भारतीय सभ्यता, संस्कृति, परम्परा, रीति रिवाज के विपरीत एक बौद्धिक आन्दोलन की भांति प्रचारित-प्रसारित किया गया। जिससे आकर्षित होकर भारत के बुद्धिजीवी वर्ग ने व्यक्तिगत लाभ को ध्यान में रखते हुए इसे अपनाया और अंग्रेजो के जाल में फंसते चले गए। लगभग दो सौ वर्षो के शासनकाल में अंग्रेजो की शिक्षा व्यवस्था का प्रभाव भारत की इक्कीसवीं सदी में भी स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहा है। मातृभाषा, क्षेत्रीय भाषा, राष्ट्रीय भाषा को छोड़कर अंग्रेजो की भाषा एवं साहित्य का अंधानुकरण वर्तमान भारतीय समाज में देखने को मिलता है। पाश्चात्य शिक्षा अंग्रेजो द्वारा थोपी गई शिक्षा व्यवस्था है जो हमेशा से भारतीयों के प्रतिकूल रही है। इस प्रकार पाश्चात्य शिक्षा भारत की प्राच्य शिक्षा के उपर थोपी गयी व्यवस्था है। इस शिक्षा पद्धति को बाह्य आवरण एवं बनावटी तौर पर स्वीकार किया गया है किंतु भारतीय जनमानस की मूल भाषा प्राच्य साहित्य जैसे संस्कृत, तमिल, तेलगु, कन्नड़, मलयालम, गुजराती, मराठी आदि की प्रमुखता है।

प्राच्य शिक्षा व पाश्चात्य शिक्षा विवाद: शिक्षा मानव के व्यवहार में परिवर्तन कर उसे समझ में समायोजन करने के योग्य बनाती है यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके माध्यम से व्यक्ति का सर्वांगीण विकास होता है किंतु भारत के इतिहास में एक ऐसा समय आया जब भारत के परंपरागत साहित्य को नजरअंदाज किया गया। भारत में प्राच्य एवं पाश्चात्य शिक्षा विवाद का कारण भारत में कंपनी का आज्ञापत्र सर्वप्रथम जो कि वर्ष 1793 ई. में जारी हुआ। यह

आज्ञापत्र शासन व्यवस्था, व्यापार, प्रबंधन आदि से संबंधित था। 1793 ई. के बीस वर्ष बाद 1813 ई. में जारी आज्ञापत्र से ईसाई मिशनरियों को भारत में शिक्षा के प्रचार-प्रसार व विकास की स्वतंत्रता प्रदान की गई जिसमे तीन प्रमुख बातें शामिल की गईं-

1. समस्त यूरोपीय देशों के मिशनरियों को भारत में प्रवेश करने, धर्म व शिक्षा का प्रचार-प्रसार करने की पूर्ण स्वतंत्रता है।
2. भारत के जिन प्रदेशों में ईस्ट इंडिया कंपनी का शासन है वहां की शिक्षा व्यवस्था का उत्तरदायित्व वह स्वयं संभालेंगे।
3. भारतीय शिक्षा के प्रचार-प्रसार, विकास एव समृद्धि के लिए कम से कम एक लाख रुपए प्रतिवर्ष साहित्य के पुनुरुत्थान एवं उन्नति के लिए खर्च किया जाएगा।

इस प्रकार प्राच्यवादी विचारधारा एवं पाश्चात्यवादी विचारधारा के बीच उपरोक्त निर्णय ही विवाद की जड़ बना कि एक लाख रुपये कहां, कैसे एवं व किसके लिए खर्च किया जाएगा। ऐसा कोई भी निर्णय विवादित हो ही जाता है जो निष्पक्षता, न्यायप्रियता और सभी के लिए समान नहीं होता है।

प्रथम, प्राच्यवादी विचारधारा: इस विचार के समर्थक कंपनी के पुराने वरिष्ठ अनुभवी कर्मचारी थे जो हिन्दू व मुस्लिमों के साहित्य जैसे संस्कृत अरबी, फारसी के माध्यम से पढ़ाने के पक्षधर थे तथा इसी माध्यम से भारतीय साहित्य व संस्कृति का उत्थान करना चाहते थे। इस विचारधारा के समर्थन करने वाले भारत मूल भावना विश्व का कल्याण हो जैसी खुबसूरती को बनाए रखने के लिए समर्पित थे। इस विचारधारा के मानने वाले लोग इस बात के पक्षधर थे कि भारत के मूल साहित्य को सम्मान दिया जाना चाहिए।

द्वितीय, पाश्चात्यवादी विचारधारा: इस विचारधारा के समर्थक कंपनी के नवनियुक्त कर्मचारी, ईसाई मिशनरी से जुडे सदस्यगण थे जो यूरोपीय भाषा अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बनाने के पक्षधर थे। शिक्षा का माध्यम भारतीय भाषा के बजाय अंग्रेजी माध्यम बनाया गया। प्राच्य - पाश्चात्य विवाद 1813 ई. से लेकर 1833 ई. तक चला इन बीस वर्षों में दोनो पक्षों के बीच विचारो की प्रतिद्वंदता बनी रही अन्ततः 1833 ई. के आज्ञापत्र में साहित्य शब्द की पुनर्व्यख्या करते हुए भारतीय साहित्य के विकास, संवर्धन एवं उन्नयन के लिए कुल राशि का दस प्रतिशत हिस्सा सुरक्षित किया गया। प्राच्य एवं पाश्चात्य विवाद की

जड़ 1813 ई. के आज्ञापत्र की धारा 43 वीं का अंशकालिक समाधान करते हुए साहित्य एवं भारतीय साहित्य को स्पष्ट किया गया। यह विवाद भारतीय शिक्षा का एक ऐसा जख्म था जिसने भावी शिक्षा व्यवस्था का यूरोपीकरण कर दिया। आज के समय मे भी इस विवाद के धनात्मक पक्ष अग्रेजी भाषा में शिक्षा एवं साहित्य का प्रचार प्रसार प्रभावित किए हुए है। वास्तव में तो भारतीय साहित्य ही भारत की सभ्यता, संस्कृति, संस्कार, व समाज की पहचान है किंतु आज भी इसकी उपेक्षा करते हुए देखा जा सकता है।

प्राच्य शिक्षा एवं पाश्चात्य शिक्षा विवाद को परिणाम: वर्तमान समय में इक्कीसवीं सदी के तीसरे दशक मे प्राच्य-पाश्चात्य शिक्षा विवाद को लगभग सौ वर्षो से अधिक समय बीत गया है किंतु आज भी इस विवाद का प्रभाव भारतीय जनमानस के बीच, शिक्षा प्रेमियों के बीच तथा विषय विशेषज्ञों के बीच चर्चा का विषय बना रहता है। प्राच्य- पाश्चात्य शिक्षा विवाद के उपरान्त वर्ष 1835 ई. में लॉर्ड मैकाले की नीति को लाया गया था। इस शिक्षा नीति में भारत के प्राच्य शिक्षा साहित्य, ज्ञान परम्परा, विषय की पराकाष्ठा पर कठोर प्रहार किया गया। शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी होगा इस बात पर ही विशेष जोर दिया गया था। अंग्रेजी शासन सत्ता स्थापित करने एवं बने रहने के लिए व्यापार, व्यवसाय की गतिविधियों के साथ-साथ भाषा पर कब्जा करने की साजिश के साथ नीति को लाया गया। मैकाले शिक्षा नीति का प्रभाव धीरे धीरे भारत के नागरिकों पर आता गया और एक समय ऐसा आया कि लोग अंग्रेजी भाषा को ही प्रमुखता देने लगे। जिसका परिणाम यह हुआ कि भारत का अपना वृहद साहित्य वेद, पुराण, उपनिषद, वेदांग, षडदर्शन आदि को महत्व नही मिला।

भारत की प्राचीन भाषा संस्कृत का अवनति होना प्रारंभ हो गया। मध्यकालीन भारत में अरबी, फारसी, उर्दू, साहित्य को बढ़ावा मिलता गया। अंग्रेजो के शासनकाल में अंग्रेजी भाषा को विशेष प्रमुखता दी गई। धीरे धीरे भारतवासी अपनी मूल भाषा संस्कृत, तमिल, तेलगु, कन्नड़, मलयालम व उससे विकसित होने वाली अन्य भाषाओं को हीन भावना से देखा जाने लगा। जिसका परिणाम है कि आज भी अंग्रेजी भाषा को ही प्रमुखता दी जा रही है। यह प्राच्य-पाश्चात्य विवाद की जड़ में छिपा एक छद्म मानसिक दृष्टि है। जो आगामी कितने वर्षो तक रहेगा यह कहना समीचीन नहीं होगा। भारत के साहित्य के विकास व पुनरुत्थान का प्रावधान राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में किया गया है। भारतीय ज्ञान परंपरा एवं साहित्य

को विकसित करने, उसे बढ़ावा देने तथा पुनःस्थापित करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। किंतु भविष्य में यह अवलोकन का विषय होगा कि आने वाली पीढ़ी पर इसका क्या प्रभाव देखने को मिलता है। निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक समस्या का एक समाधान निकलता है प्राच्य एवं पाश्चात्य शिक्षा विवाद के परिणामस्वरूप भारतीय शिक्षा व्यवस्था को नई दिशा की ओर ले जाने का काम ब्रिटिश शासन व्यवस्था द्वारा किया गया।

उपसंहार: शिक्षा मानव विकास का सर्वप्रमुख साधन है। शिक्षा के बिना बालक का सर्वांगीण विकास होना असम्भव है। जन्म के उपरांत शिशु की प्रथम शिक्षिका मां होती है। मां के मुख से सुनने, बोलने, समझने वाली भाषा मातृभाषा या पालने की भाषा कही गयी है। बालक अभिवृद्धि एवं विकास के क्रम में परिवार, पड़ोस, रिश्तेदार एवं मित्रमंडली से बहुत कुछ सीखता है जिसके बाद वह क्षेत्रीय भाषा, राज्य भाषा, राष्ट्रीय भाषा, अन्तर्राष्ट्रीय भाषा का ज्ञानार्जन करता है। इस सम्बंध में भारत की परंपरागत भाषा एवं साहित्य ही बालक के विकास के लिए आधार हो सकती है। एक निश्चित उम्र, उपाधि एवं कौशल के बाद अंतरराष्ट्रीय भाषा एवं साहित्य का ज्ञान इसलिए आवश्यक है कि वैश्विक स्तर पर अपना स्थान बना सकें। पाश्चात्य शिक्षा पद्धति द्वारा अंग्रेजी भाषा एवं साहित्य को भारतीयों के ऊपर थोप देने से स्वाभाविक विकास प्रभावित हुआ है। प्राच्य- पाश्चात्य शिक्षा विवाद की जड़ में भारतीय समाज एवं संस्कृति, शिक्षा एवं संस्कार, विचार एवं व्यवहार समाहित हुआ दिखाई देता है। हम यह कह सकते हैं कि ब्रिटिश शासन के दौरान भारत में अंग्रेजी भाषा एवं साहित्य का प्रचार प्रसार वर्तमान के अंतर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में भारतीयों को संघर्ष करने एवं आगे ले जाने में कारगर सिद्ध हुई है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

- राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 मानव संसाधन विकास भारत सरकार द्वारा जारी हिन्दी पीडीएफ|
- यादव डा० अरविंद कुमार (वर्ष 2022), शिक्षाशास्त्र एवं समग्र अध्ययन इडुनिक पब्लिकेशन, जौनपुर (UP)|
- गुप्ता डा एस.पी (वर्ष 2009) भारतीय शिक्षा की समस्याएं प्रयाग पब्लिकेशन-इलाहाबाद(UP)|

- सारस्वत एवं सिन्हा, (वर्ष 2015-16), भारतीय शिक्षा का इतिहास एवं समस्याएं, न्यू कैलाश प्रकाशन, इलाहाबाद (UP)
- मुखर्जी आर के(वर्ष 2011) प्राचीन भारतीय शिक्षा मोती लाल बनारसी दास पब्लिकेशन नई दिल्ली|
- त्यागी गुरुसरन दास भारतीय शिक्षा का इतिहास एवं विकास अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा(UP)|